पंचम अध्याय

उपसंहार

पंचम अध्याय

उपसंहार

सुश्री उषा प्रियंवदाजी के संपूर्ण कथात्मक साहित्य को लेकर जो मैंने यह लघु-शोध प्रबन्ध लिखा है, उसका संक्षिप्त सार यह है, कि स्वातंत्र्योत्तर काल में उषा प्रियंवदा एक सफल साहित्यकार के रूप में सामने आयी। संख्या की दृष्टि से उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकें उँगलियों पर गिनी जा सकती हैं, पर स्तर की दृष्टि से उनका साहित्य उच्च है, उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य समाज के विभिन्न पक्षों को अपने साहित्य में बहुत ही सच्चाई के साथ दिखाया है। इसका कारण शायद यही रहा होगा, कि जन्म से भारतीय होने के नाते वे भारतीय समाज से घनिष्ठ परिचित हैं ही, साथ ही पाश्चात्य समाज में रहने के कारण उसके जन जीवन तथा अच्छाई-बुराई को भी देखा परखा है। तभी तो उन्होंने अपने कथात्मक साहित्य में पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

समाज की आधारभूत धारणा को समझे बिना किसी भी साहित्य में चित्रित समाज का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, इसीलिए मैंने प्रथम अध्याय में 'समाज' का अर्थ, परिभाषाएँ तथा स्वरूप का समाजशास्त्र के आधारपर विवेचन किया है। मानव जीवन में समाज का अत्याधिक महत्व है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है और समाज में रहते हुए ही अपना संपूर्ण जीवन व्यतित करता है। व्यक्ति की सभी शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में ही होती है। इस दृष्टि से व्यक्ति के लिए समाज अनिवार्य है। समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व संभव नहीं है और बिना व्यक्ति के समाज का अस्तित्व भी संभव नहीं। अर्थात् समाज और व्यक्ति का संबंध परस्पर पूरक है।

साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है। अत: वह जिस समाज

में रहता है, उसका प्रभाव उसके दृष्टिकोण तथा जीवन दर्शन पर पडता है। साहित्यकार समाज में रहता हुआ, अपने युग के वातावरण में विकसित होता हुआ, अपने वातावरण से ही अपने साहित्य तंतुओं का निर्माण करता हुआ, उसी वातावरण को अपनी साहित्य कृतियों में चित्रित करता है।

सुश्री प्रियंवदाजी भी इसके लिए अपवाद नहीं है। वह भारतीय वातावरण में रह चुकी है और अब अमरीकी परिवेश में रह रही है। अत: उन दोनों समाज और परिवेश से वे प्रभावित है। उनकी साहित्य-कृतियों को देखकर यह बात स्पष्ट होती है।

दूसरे अध्याय में मैंने उषा प्रियंवदाजी के सभी उपन्यास और कथा संग्रहों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उन साहित्यिक कृतियों के आधारपर ही उनके व्यक्तित्व को उजागर करने का प्रयास किया है। समग्र साहित्य का परिचय देने के पीछे मेरी यह धारणा रही है कि इसके द्वारा शोध-प्रबंध को समझने में सुविधा हो, साथ-ही साथ पाठक उषा प्रियंवदा के कथात्मक साहित्य तथा प्रबन्ध-विषय की आधारभूमि से परिचित भी हो सके। प्रियंवदाजी भारतीय और पाश्चात्य दो भिन्न परिवेशों में रह चुकी है। उनके साहित्य सृजन का प्रारंभ भारत में ही हुआ। अत: उनकी 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास, 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी संग्रह आदि प्रारंभिक कृतियों में विशुध्द रूप से भारतीय निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्रण मिलता है। उसके बाद वे अमरीका चली गयी। अमरीका जाने के पश्चात् उन्होंने साहित्य का सृजन विदेशी पृष्ठभूमि पर किया, जिसमें उन्होंने विदेश में स्थित भारतीय प्रवासी समाज को अपने साहित्य का विषय बनाया। यह समाज साहित्यिक रूप से प्राय: उपेक्षित रहा था, क्योंकि भारतीय साहित्यिक अपने ही दायरे में सीमित भारतीय लोगों के जनजीवन को साहित्य का विषय बनाकर उन्हीं की मान्यताओं, समस्याओं का चित्रण करते रहे। अत: इन लोगों की उलझनों, समस्याओं को शायद की किसी ने साहित्यिक रूप दिया होगा। इस उखडे हुए समाज को, उन भारतीयों को जो यहाँसे वहाँ आरोपित किये गये है, उन्हीं की समस्याओं, उलझनों, अन्तर्विरोधों को प्रियंवदाजी ने अपने साहित्य के

माध्यम से वाणी देने का प्रयास किया है । यह उनके साहित्यिक विषय का अनोखापन है । इसके पीछे एक यह भी कारण है, कि उषाजी स्वयं भी वहाँ रह रही हैं । विदेश में रहते हुए परिवेशगत और सांस्कृतिक भिन्नता के कारण जिन मानसिक पीडाओं को सहना पडता है, उन्होंने जान लिया है, इस स्थिति की वे भुक्तभोगी हैं । अत: उन्होंने इस समाज को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है ।

शायद यह बात संभव है, कि कुछ लोगों को मेरे इस शोध-प्रबन्ध के विषय के संदर्भ में यह सोचकर कि 'उषा प्रियंवदाजी का अधिकतर साहित्य तो व्यक्तिवादी है, अत: उसमें समाज का चित्रण कहाँ प्राप्त होगा ।' थोडी हैरानी हो सकती है । स्वयं लेखिका ने भी इस पर थोडा विस्मय प्रकट किया है । शोध-प्रबन्ध के संदर्भ में लिखे पत्र में उन्होंने लिखा है -- 'मेरे साहित्य में प्रतिबिंबित समाज' विषय तो आपने रोचक चुना है, क्योंकि लिखते समय मुझे यह ध्यान नहीं रहता, कि समाज का चित्रण कैसा होना चाहिए, क्योंकि मेरा ध्यान तो व्यक्ति पर रहता है, समाज के संदर्भ में व्यक्तित्व का विकास ।' परंतु मेरे विचार में व्यक्तिवादी साहित्य में भी सामाजिकता है और सामाजिक साहित्य में भी व्यक्ति का स्वर निहित रहता है, क्योंकि बिना समाज के व्यक्ति का अस्तित्व नगण्य है । अत: यह नहीं कहा जा सकता, कि जो साहित्यकार व्यक्तिवादी है, वह सामाजिक नहीं है या जो सामाजिक है, वह व्यक्तिवादी नहीं है । मनुष्य समाज का महत्वपूर्ण अंग है । समाज के प्रति आक्रोश, विद्रोह और विक्षोभ का प्रदर्शन करते हुए भी अंतत: मनुष्य को समाज में ही रहना है । व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व भले ही हो, लेकिन समाज उसके लिए अनिवार्य है । वस्तुत: समाज ही व्यक्ति का सृजन कर्ता है । अत: समाज के प्रति व्यक्ति का लगाव तथा आक्रोश भी ठीक उसी प्रकार का है, जैसे बच्चे का अपने माँ के प्रति होनेवाला दुलार और रूठना । यही कारण है, कि व्यक्ति समाज के प्रति चाहे जितना आक्रोश क्यों न प्रकट करे, वह उससे पूर्णत: पृथक नहीं हो सकता । इसी तथ्य के कारण किसी भी साहित्यकार के लिए समाज का चित्रण चाहे प्रमुख रूप से हो, चाहे गौण रूप से अनिवार्य है । सुश्री प्रियंवदाजी भी इस बात के लिए अपवाद नहीं हैं । उनके कथात्मक साहित्य

में व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में समाज का चित्रण मिलता है । चूँकि प्रियंवदाजी ने यह लिखा है कि `लिखते समय मुझे यह ध्यान नहीं रहता कि समाज का चित्रण कैसा होना चाहिए ।` परंतु फिर भी उन्होंने जाने अनजाने में समाज के सभी महत्वपूर्ण पक्षों का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है । आज का भारतीय समाज अपनी परंपराओं से मुक्त होकर नई जीवन दृष्टि को अपना रहा है । इस नवग्रहण की प्रक्रिया के लाभ,हानी,दोष,समस्यायें तथा उसका व्यक्ति जीवन पर पडा प्रभाव आदि बातों का चित्रण भी उन्होंने सफलता से किया है । समाज का दायरा काफी विस्तृत है, अत: उसका समग्र चित्रण किसी के लिए भी संभव नहीं । फिर भी मैंने प्रियंवदाजी के साहित्य में प्राप्त होनेवाले समाज के महत्वपूर्ण पक्ष-व्यक्ति, परिवार,विवाह,स्त्री-पुरुष संबंध, आर्थिक पक्ष, धार्मिक पक्ष,सांस्कृतिक पक्ष तथा विधि - संस्कार आदि को इस शोध-प्रबंध में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

समाज की प्राथमिक इकाई व्यक्ति है । व्यक्ति और समाज का संबंध हमेशा परस्पर पूरक रहा है । परंतु आज व्यक्तिस्वातंत्र्य के प्रभाव से व्यक्ति समाज के प्रति विद्रोह और अवास्था प्रकट करते हुए उसके सभी परंपरागत मूल्यों को नकार रहा है । प्रियंवदाजी स्वयं व्यक्ति स्वातंत्र्य में विश्वास रखती हैं अत: उन्होंने इस पक्ष को अत्यंत सशक्त रूप से चित्रित किया है ।

समाज की आधारभूत संस्था परिवार है । प्रियंवदाजी ने आधुनिक परिवारों के चित्रण के साथ कहीं कहीं परंपरागत परिवारों की भी झलक दिखाई है । आज की परिवर्तित परिस्थिति में परिवार टूट रहे हैं । परिवारों में होनेवाला स्नेह,आत्मीयता और सहिष्णुता की भावना कम हो रही है । बच्चों के दूर रहने से माता-पिता और बच्चों में दूराव आ रहा है । `रूकोगी नहीं,... राधिका ?` `पचपन खम्भे लाल दीवारें`, उपन्यास तथा `वापसी` कहानी में परिवर्तित पारिवारिक मान्यताओं का सजीव चित्रण मिलता है ।

परिवार से संबंधित ही विवाह संस्था है । प्रियंवदाजी ने युगीन-बोध के साथ इस संस्था में आये परिवर्तन को दिखाया है । भारतीय समाज में विवाह

को एक धार्मिक संस्कार माना गया है । अतः लोगों के मन में विवाह के प्रति आस्था की भावना रही है । परंतु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने भारतीय विवाह संस्था को भी झकझोर किया । आज विवाह का आधार प्रेम या भावात्मक संवेदना न होकर वह केवल एक सामाजिक समझौता रहा है । अतः अब परंपरागत विवाह को एक निरर्थक बंधन माना जा रहा है । प्रियंवदाजी के ' शेषयात्रा ' उपन्यास में विवाह की टूटती आस्था के दर्शन होते हैं । इस उपन्यास का प्रणव परंपरागत विवाह को निरर्थक घोषित कर अपनी पत्नी को तलाक देता है । इसके अतिरिक्त ' झूठा दर्पण ', ' प्रतिध्वनि ' आदि कहानियों में भी विवाह की टूटती मान्यता दिखाई देती है ।

नई जीवन दृष्टि ने विवाह के साथ ही स्त्री-पुरुष संबंधों को विभिन्न आयाम दिये । स्वच्छन्द प्रेम, यौन स्वच्छन्दता आदि के कारण स्त्री - पुरुष के दाम्पत्यगत संबंधों में उच्छृंखलता आ गयी, स्त्री-पुरुषों के कई बनाम संबंधों का दायरा भी विस्तृत हो गया । प्रियंवदाजी के ' शेषयात्रा ' उपन्यास में दाम्पत्यगत संबंधों में आया बिखराव दिखाई देता है । इसके साथ ही ' प्रतिध्वनि ' ट्रिप ', ' कितना बडा झूठ ' तथा ' संबंध ' आदि अनेक कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों के विभिन्न पक्षों का उन्होंने यथार्थ चित्रण किया है ।

आर्थिक संस्था भी समाज की महत्वपूर्ण संस्था है । आज की नई अर्थ व्यवस्था ने मनुष्य को स्वार्थी बना दिया है । अब ' अर्थ ' ही मानवजीवन का महत्वपूर्ण तथ्य बन गया है । प्रियंवदाजी ने विशेष रूप से मध्य वर्गीय समाज की आर्थिक स्थिति तथा उनकी आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है । ' उनके पचपन खम्भे लाल दीवारें ' उपन्यास में आर्थिक समस्या से उत्पन्न पारिवारिक समस्या का वास्तविक चित्रण मिलता है । आज हमारे समाज में कितनी ही ऐसी ' सुषमा ' जैसी लडकियाँ हैं जिन्हें आर्थिक विवशताओं में उलझने से अपने व्यक्तिगत सुख को तिलांजली देनी पडती है ।

वर्तमान युग के बदलते हुए समाज में धार्मिक संस्था में भी परिवर्तन आ गया । परंपरागत आस्तिकता और वैज्ञानिक दृष्टि की नास्तिकता दोनों के टकराव से `धर्म` में एक विसंगती दिखाई देने लगी, कथनी और करनी के अंतर से, आडाडंबर से धर्म का रूप विकृत हो गया । समाज के अन्य पक्षों की तुलना से प्रियंवदाजी के कथात्मक साहित्य में यह पक्ष अत्यंत क्षीण रूप में दिखाई देता है ।

इन सभी पक्षों के साथ-साथ उन्होंने समाज के सांस्कृतिक पक्ष तथा विधि-संस्कारों को भी सशक्त रूप में अंकीत किया है । उनके कथात्मक साहित्य में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का समन्वय दिखाई देता है । भारतीय संस्कृति के सभी क्षेत्रों को आज पाश्चात्य सभ्यता ने स्पर्श किया है । भारतीय समाज में खान-पान से लेकर उत्सव-पर्वों तक सभी बातों में पाश्चात्य ढंग को अपनाया जा रहा है । उनके `रुकोगी नहीं,... राधिका ?`, `शेषायात्रा` आदि उपन्यास तथा `चांदनी` में बर्फ पर`, `सागर पार का संगीत` आदि कहानियों में दोनों संस्कृतियों का मिला जुला रूप दिखाई देता है ।

सुश्री उषा प्रियंवदाजी एक अत्यंत संवेदनाशील लेखिका है । एक नारी होने के नाते उन्होंने नारी जीवन को सूक्ष्मता से जान लिया है । यही कारण है, कि उनका अधिकांश साहित्य नारीप्रधान रहा है । नारी के परंपरागत रूप से लेकर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित आधुनिक नारी तक, उन्होंने नारी के अनेक रूपों का सूक्ष्मता से अंकन किया है ।

एक सजग रचनाकार की हैसियत से प्रियंवदाजी ने नये युग के साथ-साथ उत्पन्न हुई नयी सामाजिक समस्याओं को उन्होंने देखा अनुभव किया और अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया । उन्होंने नये-युग बोध के संदर्भ में समाज की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है, परंतु हमने केवल उन्हीं समस्याओं को प्रस्तुत किया है, जो अत्यंत अद्यतन हो ।

आज की परिवर्तित मान्यताओं तथा समाज विघायक टूटती आस्थाओं के कारण व्यक्ति भीड़ में अकेला हो गया है । आधुनिक जीवन की भीषण

विभिषिकाओं में फँसा व्यक्ति समाज में कोई रागात्मकता नहीं पाता और इसीकारण वह समाज से कट जाता है, उसमें अजनबीपन की भावना पनपती है, विदेशी परिवेश में रहते हुए परिवेशगत और सांस्कृतिक भिन्नता के कारण यह अजनबीपन और भी मुखर हो जाता है । प्रियंवदाजी विदेश में रहते हुए स्वयं को भी अजनबी पाती हैं, अत: उन्होंने इस समस्या को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है । उनके ' पचपन खम्भे लाल दीवारें ', ' रुकोगी नहीं,.. राधिका ? ', उपन्यास तथा ' नींद ', ' सागर पार का संगीत ' आदि कहानियों में इस समस्या का चित्रण मिलता है ।

सांस्कृतिक समस्या भी आज के युग की महत्वपूर्ण समस्या है । पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आज हमारी संस्कृति में काफी परिवर्तन आ गया । पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण ने भारतीय समाज में अंधानुकरण की प्रवृत्ति पनप गयी और व्यक्ति ने पाश्चात्य समाज के सभी सही गलत तरीकों को अपनाया । जिसके परिणाम स्वरूप हमारी संस्कृति में अस्मिता के संकट की स्थिति निर्माण हो गयी है । प्रियंवदाजी ने पाश्चात्य सभ्यता को निकट से देखा है । यही कारण है, कि उन्होंने सांस्कृतिक समस्या को सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है ।

विवाह की समस्या सामाजिक कुप्रथाओं के कारण हर युग में रही है, परंतु आज दहेज, अनमेल विवाह आदि कुप्रथाओं के साथ ही परिवर्तित जीवन दृष्टि के कारण विवाह की आवश्यकता और सार्थकता को ही प्रश्नांकित किया जाने लगा है । प्रियंवदाजी के ' स्वीकृति ', ' प्रतिध्वनि ' आदि कहानियों में इस समस्या का चित्रण मिलता है ।

प्रियंवदाजी स्वयं एक पढी लिखी कामकाजी नारी हैं । नौकरी करते समय नारी को घर-बाहर जिन समस्याओं से टकराना पडता है उसे उन्होंने अनुभव के स्तर पर जाना है । यही कारण है कि उन्होंने नौकरीपेशा नारी की समस्या को,उसके भावात्मक संघर्ष को गहरी संवेदना से चित्रित किया है ।

आज हमारे समाज की अत्यंत ज्वलंत समस्या है ' शिक्षित बेरोजगारी की समस्या ' । बढती हुई जनसंख्या और औद्योगिकरण के कारण यह समस्या अत्यंत गंभीर रूप धारण कर रही है । प्रियंवदाजी ने भारतीय समाज के बेरोजगारी की

समस्या के साथ ही विदेश में होनेवाले भारतीय युवकों के नौकरी की समस्या को भी झलक दिखाई है ।

इन सभी समस्याओं के साथ नैतिक समस्या का भी उन्होंने चित्रण किया है ।

यद्यपि प्रियंवदाजीने अपने कथात्मक साहित्य में समाज की अनेक समस्याओं का चित्रण किया है, बल्कि उन्होंने किसी समस्या का हल नहीं बताया । उनका 'शेषयात्रा' उपन्यास इसके लिए अपवाद है । इसमें उन्होंने परित्यक्ता नारी को आत्मनिर्भर होकर पुन:र्विवाह कर फिरसे जीवन को संवारने का संदेश दिया है । परंतु अन्य समस्याओं के बारे में वे मौन ही है । फिर भी उन्होंने आधुनिक समाज जीवन और उसकी समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है ।

'साहित्य समाज को बदलने का शक्ति तो शायद नहीं रखता, पर सामाजिक जीवन में पायी जानेवाली विसंगतियोंके प्रति समाज को सजग और सचेत करने की क्षमता जरूर रखता है ।'[१]

अंत में हम विश्वास के साथ कहते हैं कि सुश्री उषा प्रियंवदा जी के कथात्मक साहित्य में युगानुकूल समाज, युगबोध तथा परिवेश का सांगोपांग चित्रण हुआ है, जिनका प्रस्तुतिकरण यथार्थवादी-भावभूमिपर अवस्थित है ।

---

१ परिचर्चा - आयोजिका मृदुला गर्ग - उद्धृत - हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व - डॉ. मंजुला गुप्ता - सूर्य प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९८६ - पृ. ४५ ।